International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(II), July - September, 2022, pp. 153-156

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में नारी चेतना की गूँज

सीमा खड़कवाल*

प्रस्तावना

स्त्री जीवन की संवेदनाओ, पीड़ाओ एवं संघर्षो को अपनी कहानियों में जगह देने वाले शब्द–शिल्पी रेणु प्रगतिशील सोच के कथाकार रहे है। हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रेणु को हिन्दी का आंचलिक कथाकार भी कहा जाता है। प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन और ग्रामीण नारी को अपनी यथार्थ दृष्टि के साथ साहित्य में स्थान देने वाले पहले कथाकार रहे है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में फणीश्वरनाथ रेणु भी प्रेमचन्द की इसी परम्परा को आत्मसात करके चले है। रेणु सारी जिन्दगी अपने गाँव और अपनी जड़ों से जुड़े रहे और यह जुड़ाव उनकी कहानियों में भी नजर आता है। "प्रेमचन्द की कृतियों की भाँति रेणु की कहानियों में भी दीन–दुखी और शोषित जनों के लिए गहरी करूणा मिलती है।"[1]

यदि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में भारत के ग्रामीण नारी जीवन का अंकन करते हुए उसके विविध रूपों को दिखाया है तो रेणु की कहानियाँ भी दर्शाती है कि मिथिला अंचल के विभिन्न आयामों को उकेरते हुए उसकी आधी आबादी के सुख–दुख उनकी अनुभवी और पारखी दृष्टि से नहीं बच पाये है। उनकी कहानियों में अंचल की स्त्रियों की सामाजिक दशा, आर्थिक पराधीनता, अशिक्षा और पितृसत्तात्मक समाज की सामन्तवादी सोच के कारण होने वाले उनके शारीरिक–मानसिक उत्पीड़न को देखा जा सकता है। रेणु जब लेखन के क्षेत्र में उतरे उस समय देश स्वतन्त्र हो चुका था लेकिन ग्रामीण स्त्री अभी भी समाज में हाशिये पर ही थी। पुरूषवादी मानसिता के बोझ तले दबी और रूढ़ियों में जकड़ी भारतीय ग्रामीण नारी शहरों में रहने वाली स्त्रियों की तुलना में अभी भी शिक्षा, सामाजिक चेतना, आधुनिकता से कोसो दूर होकर पिछड़ेपन के दलदल में धंसी हुई थी। आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवारों में भी स्त्री के प्रति परम्परागत सामन्ती मानसिकता में बदलाव नहीं आया था। ग्रामीण नारी चाहे वो किसी समाज और वर्ग की हो, परम्परागत मान्यताओं से बँध कर परिवार, समाज, जाति–बिरादरी हर जगह शोषण और अन्याय का दर्द झेल रही थी।

ग्रामांचल में जन्मे रेणु समाज में स्त्रियों की इस हीन दशा से परिचित थे। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' की तरह ही उनकी कहानियों में भी स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक दशा और उसकी चेतना में आ रहे बदलाव को देखा जा सकता है। रेणु ने अपने सम्पूर्ण जीवन काल में कुल 63 कहानियाँ लिखी है। उन्होंने ग्रामीण जीवन के साथ–साथ शहरी जीवन को आधार बना कर भी कुछ कहानियाँ लिखी है लेकिन उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय कहानियाँ पंचलाईट, लालपान की बेगम, तीसरी कसम, संवदिया, ठेस, तीर्थोदक, रसप्रिया, नैना जोगिन, भित्तिचित्र की मयूरी आदि ग्राम जीवन पर ही आधारित है। रेणु की कहानियों में शोषित और प्रताड़ित स्त्री को हर जगह विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में अपने जीवन संघर्षों से जूझती हुई भी वह एक साधारण स्त्री के रूप

* सह–आचार्य (हिन्दी), एस.आर.पी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदीकुँई, दौसा, राजस्थान।

में ही नजर आती है। 'रसप्रिया' कहानी में रमपतिया बाल विधवा है। वह और पंचकौड़ी मिरदंगिया एक दूसरे से प्रेम करते हैं, विवाह तय हो जाने के बाद पंचकौडी मिरदंगिया अपनी निम्न जाति का राज खुल जाने के भय से विवाह के पूर्व ही उसे छोड़कर भाग जाता है। पंचकौड़ी के धोखे और छल को जानकर भी आक्रोशित रमपतिया उसे भूल नहीं पाती। अभावों से भरा संघर्षमय जीवन जीती और अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अनेक समझौते करती रमपतिया पंचकौड़ी के प्रेम की स्मृति को निरन्तर अपने ह्रदय में जिन्दा रखती है

'प्राणों में घुले हुए रंग में' खानाबदोश डोमन जाति की युवती का पति हैजे का शिकार होकर मरणासन्न पड़ा है। उसकी बिरादरी के लोग अपना–अपना खेमा उठाकर अन्यत्र जा रहे है। कोई भी उसके बीमार पति की सुध लेने और उसकी सहायता के लिए तैयार नहीं है। सभी उसकी युवा और सुन्दर देह पर गिद्ध दृष्टि लगाये हुए है। युवती का ससुर अपने मरणासन्न पुत्र के समक्ष ही अपनी बहू को रानी बनाकर पत्नी के रुप में साथ रखने का प्रस्ताव रखता है। बिरादरी के अन्य युवक भी उसे बीमार पति को छोडकर अपने साथ चलने का आग्रह करते हैं जिसे वह ठुकरा देती है।

रेणु की कहानियाँ भारत के ग्रामीण अंचल की चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली है। रेणु यह जानते थे कि जब तक समाज में महिलाओं पर अत्याचार होते रहेंगे, उन्हें पुरूषों के समान आगे बढ़ने के समान अवसर नहीं मिलेगें, तब तक स्वस्थ और विकसित समाज का निर्माण सम्भव नहीं होगा। उन्होंने अपनी कहानियों के नारी पात्रों द्वारा समाज में स्त्री जाति के खिलाफ हो रहे अन्याय के विरूद्ध चेतना जागृत करने का प्रयास किया। उनके नारी पात्रों में समाज से विद्रोह करने और संघर्ष करने की क्षमता है। अनेक बार इस विद्रोह का खामियाजा उन्हें सामाजिक तिरस्कार और उपेक्षा के रूप में भी झेलना पडता है लेकिन फिर भी वह हार मानने को तैयार नहीं होती। 'नैना जोगिन' गाँव की निम्न जाति की गरीब युवती रतनी की कहानी है। रतनी की गरीब और असहाय माँ गाँव की हवेली में नौकरानी का काम करती है। हवेली का धनी और प्रतिष्ठित स्वामी जो वृद्ध था,उसने सात वर्षीय बालिका के साथ दुष्कर्म का प्रयास किया। बालिका रतनी अत्यन्त निर्भीकता और आत्मविश्वास के साथ वृद्ध की सारी करतूत पंचायत और अदालत में उजागर कर उसे उसका परिणाम भुगतने पर विवश कर देती है, हालांकि इसके बाद रतनी और उसकी माँ को नाराज गाँव–जाति के लोगों द्वारा अघोषित रूप से बहिष्कृत होने की मानसिक यातना भी भुगतनी पड़ती है। लेकिन यह सात वर्ष की उम्र में इलाके में कहर मचाने वाली बालिका रतनी का प्रभाव ही था कि उसके युवा होने पर भी उससे आँखे मिलाने की या उसकी तरफ गलत दृष्टि से ताकने की ताकत गाँव के किसी आवारा और बहके हुए नौजवान में भी फिर कभी नहीं हुई। रतनी को देखते ही उनकी आँखों के सामने पंचायत, थाना, पुलिस, फौजदारी, अदालत, जेल नाचने लगते थे। पिता और भाई की छाया से वंचित रतनी ने यदि बाल्यावस्था में ही हिम्मत न दिखाई होती तो उसका यौन–उत्पीड़न और शोषण से बचाव सम्भव नहीं था।

रेणु ने अपनी कहानियों में उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग की नारी को उसकी संस्कृति और परम्पराओं के साथ प्रस्तुत किया है। रेणु की कहानियां स्वातन्त्र्योत्तर भारत का सांस्कृतिक आईना है। परम्परागत मान्यताओं में आस्था रखने वाले ये नारी पात्र अपने जीवन और अस्तित्व का प्रश्न उत्पन्न होने पर इन मान्यताओं को ध्वस्त करने में तनिक भी समय नहीं लगाते। 'टोन्टी नैन का खेल' की नायिका आरती सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार की मिडिल क्लास पास धार्मिक प्रवृत्ति की सुन्दर युवती है। उसके वैष्णव भक्त दादा उसका विवाह एक कीर्तनिया से तय कर देते हैं। यह युवक किसी भी दृष्टि से आरती के योग्य नहीं है। आरती की माँ इस विवाह का विरोध करती है लेकिन आरती के दादा अपनी जिद पर अड़े रहते हैं। विवाह की रस्मों के मध्य ही आरती बेहोश होने का अभिनय कर विवाह रूकवा लेती है और रात्रि में ही अपनी पसन्द के युवक के साथ घर छोड़ कर चली जाती है। वह पारिवारिक दबाव के कारण निपट गँवार कीर्तनिया से शादी करके अपना जीवन बर्बाद करने के लिए तैयार नहीं होती। समाज में बदनामी का भय भी उसे अपनी राह से विचलित नहीं कर पाता । रेणु की कहानियाँ नारी में जीवन के प्रति आस्था जगाती है और उन्हें नारी विरोधी व्यवस्था के विरूद्ध उठ खड़े होने की प्रेरणा देती है।

रेणु के समय समाज में स्त्री शिक्षा का प्रचलन नहीं था और स्त्री आर्थिक रूप से परिवार के पुरूष सदस्यों पर ही निर्भर थी। यही कारण है कि उनकी कहानियों के अधिकांश नारी पात्र असहाय, अनपढ़, पीड़ित और अंधविश्वासी है। जीवन में कदम–कदम पर अनेक सामाजिक विकृतियों तथा त्रासद स्थितियों से जूझते हुए भी यह अपनी संवेदनशीलता को नहीं छोड़ते और हर मूल्य पर अपने आत्मसम्मान और अपनी गरिमा को बचाए रखने का प्रयास करते हैं। रेणु की अत्यन्त मर्मस्पर्शी कहानी 'संवदिया' में गाँव की बड़ी हवेली की बड़ी बहू अपने पति की मृत्यु और बँटवारे के बाद हवेली में अकेली रह जाती है। आर्थिक अभावो में जैसे–तैसे वह अपना जीवन गुजारती है लेकिन फिर भी वह अपनी नैतिकता, मूल्यों और संवेदनशीलता से समझौता नहीं करती। जीवन में संघर्ष के कुछ क्षणों में कमजोर पड़ जाने पर वह अपनी दारूण स्थिति से मुक्ति के लिए संवदिया के मार्फत पीहर संवाद भिजवाती है–

"और कितना कड़ा करू दिल? माँ से कहना मैं भाई–भाभियों की नौकरी करके पेट पालूंगी। बच्चों के जूठन खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन यहाँ अब नहीं, अब नहीं रह सकूंगी.....कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नहीं ले जाएगी तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बाँधकर पोखरे में डूब मरूंगी।..... बथुआ साग खाकर कब तक जीऊं? किसलिए.....किसके लिए?"[2] बाद में उसे अपने निर्णय पर पछतावा होता है और वह पीहर जाने के बजाय अपनी मुश्किलों और अभावों के साथ अपनी हवेली में ही आत्मसम्मान के साथ रहने का निर्णय लेती है।

रेणु जहाँ एक ओर अपनी कहानियों में पितृसत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति, उसकी समस्याओं व वेदनाओं का चित्रण यथार्थ रूप में करते हैं तो दूसरी ओर धीरे–धीरे बदलते सामाजिक परिवेश में नारी की मानसिकता में होने वाले परिवर्तनों को मार्मिक रूप से अंकित करना भी नहीं भूलते। 'तीर्थोदक' कहानी में लल्लू की माँ तीर्थ यात्रा पर जाना चाहती है लेकिन उसका पति और उसका परिवार उसकी इस इच्छा का विरोध करता है। वह अपने पति की समझाइश और नाराजगी की परवाह किये बिना, युवा पुत्रो के असहयोग के बाद भी अकेली गाँव के कुछ स्त्री–पुरूषों के साथ तीर्थ यात्रा पर चली जाती है। जीवन भर पति की इच्छा और आदेशों के अनुसार जीने वाली और घर की दहलीज से बाहर पाँव भी नहीं रखने वाली लल्लू की माँ अपनी तीर्थ यात्रा की लालसा को पूरा करती है। यह एक घरेलु स्त्री के अपनी सीमाओं के भीतर विद्रोह की कहानी है।

रेणु की कहानियों में आये नारी पात्रों में संघर्ष करने के साथ–साथ जीवन के प्रति अदम्य लालसा भी है जो उन्हें अपना जीवन बदलने, अपने जीवन–स्तर को उठाने के लिए प्रेरित करती है और अन्ततः वे इसमें सफल भी होती है। 'लाल पान की बेगम' की नायिका बिरजू की माँ एक साधारण ग्रामीण स्त्री है जिसका पति टोले के अन्य पुरूषों की भाँति मजदूरी करता है। सरकारी सर्वे सेटलमेंट के समय सरकार द्वारा भूमिहीनों को जमीन देने की योजना लागू होने पर बिरजू की माँ भी अपनी जमीन होने का सपना देखती है। वह जानती है कि यदि अभी उसने साहस नहीं किया तो दुबारा उसे जीवन में गरीबी, शोषण और मजदूरी के चक्रव्यूह से बाहर निकलने का मौका नहीं मिलेगा। हालांकि बिरजू की माँ को जमीन का स्वामित्व तो हासिल हुआ लेकिन उसके लिए उसे और उसके पति को जमींदार की अनेक धमकियों और विभिन्न प्रकार के दबावों का सामना करना पड़ा। "बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा है। बाबू साहब गुस्से से सरकस के बाघ की तरह हुमड़ते रह गए। उनका बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया।"[3]

जमीन हासिल करने के लिए बिरजू की माँ ने जो संघर्ष और साहस किया, वह उसे ग्रामीण परिवेश की और उसी के टोले की अन्य स्त्रियों से अलग करता है। "बिरजू की माँ दिन–रात मंझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन। रोज आकर माथा पकड़ के बैठ जाय–मुझे जमीन नहीं लेनी है बिरजू की माँ, मजूरी ही अच्छी । जवाब देती थी बिरजू की माँ खूब सोच–समझ के छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता तो क्या होगा। जोरू–जमीन जोर के नहीं तो किसी और के।"[4] जमीन हासिल करने के बाद उसका पति टोले के अन्य पुरूषों की तरह मजदूर नहीं रहता है बल्कि पाँच बीघे धनहर जमीन का मालिक बन जाता है। हर संघर्ष में पति का साथ देकर अपने जीवन को संवारने और परिवार के स्तर को ऊँचा उठाने में कामयाब होने वाली बिरजू की माँ वाकई 'लालपान की बेगम' है।

रेणु के द्वारा चित्रित नारी पात्र चाहे शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, वे तेजस्वी होने के साथ विद्रोही भी है, उनकी 'जलवा' कहानी की नायिका फातिमा दी ऐसी ही स्वाभिमानी और तेजस्विनी नारी है जो नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए समस्त कष्ट सहन करती है लेकिन अपने विश्वास और आस्था के मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं होती। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेकर शहर की गलियों में आजादी का अलख जगाने वाली, कांग्रेस की सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में सन् 1947 के हिन्दू–मुस्लिम दंगो के समय बिना डरे उपद्रवियों से जूझने और उनका सामना करने वाली फातिमा दी आजादी के बाद राजनीति छोड़ देती है। राजनीति में पैदा अवसरवादिता, भ्रष्टाचार और कांग्रेस नेताओ के चारित्रिक पतन को देख कर फातिमा क्षुब्ध हो जाती है। लेखक के राजनीति छोड़ने के प्रश्न पर वह जवाब देती है,"यह मुझसे क्यों पूछते हो? अपने उन नवाबजादों से कभी क्यों नहीं पूछा, जो रातों रात 'देशभगत' बनकर कांग्रेस के खेमे में दाखिल हो गए.....बगल में छुरी दबाकर! अपने नेताओ से क्यों नहीं जवाब तलब करतें? कल तक गांधी–जवाहर–पटेल को सरेआम गालियां देने वाले, कौमी झण्डे को जलाने वाले फिरकापरस्त लीगियो की इज्जत अफजाई की गई और मुल्क के लिए कटने–मिटने वालों को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका!"[5] स्पष्ट है कि फातिमा दी राजनीतिक जीवन में देशहित को सर्वोच्च प्राथमिकता देने वाली, नयी आस्था और प्रेरणा से युक्त प्रगतिशील सोच की सच्ची निर्भीक नारी है।

कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में रेणु ने दम तोड़ती सामन्ती और नवस्थापित पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोधों के मध्य पिसने वाली और नारकीय स्थितियों से गुजरने वाली आम भारतीय नारी की जीवन गाथा को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। साथ ही परम्परागत संस्कारो एवं मान्यताओं में जकड़ी नारी की घुटन, कुंठा, विवशता, वेदना, उत्पीड़न आदि का चित्रण करते हुए उससे मुक्ति के लिए किये गये संघर्ष को भी दशार्या हैं। ऐसा करके उन्होंने समाज में नारी चेतना के लिए मार्ग प्रशस्त किया ताकि भारतीय ग्रामीण नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिकृष्ण कौल, फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ : शिल्प और सार्थकता, पृष्ठ 85
2. फणीश्वरनाथ रेणु, मेरी कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ – 69
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मेरी कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ – 59
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मेरी कहानियॉ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ – 60
5. फणीश्वरनाथ रेणु, मेरी कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ – 97

❖◆❖